

## पाठ्यक्रम - २२

२२ अ

### मोक्षमहल की प्रथम सीढ़ी - सम्यगदर्शन

सम्यगदर्शन, सम्यगज्ञान और सम्यगचारित्र इन तीनों को रत्नत्रय कहते हैं। इन तीनों की एकता ही मोक्ष मार्ग अर्थात् मोक्ष प्राप्ति का उपाय है। इसके दो भेद हैं - व्यवहार रत्नत्रय और निश्चय रत्नत्रय।

सात तत्त्वों, देव, शास्त्र व गुरु आदि की श्रद्धा, आगम का ज्ञान तथा व्रतादि रूप चारित्र को भेद रत्नत्रय अर्थात् व्यवहार मोक्षमार्ग कहा जाता है। आत्म स्वरूप की श्रद्धा, इसी का स्वसंवेदन ज्ञान और इसी में निश्चल स्थिति या निर्विकल्प समाधि को अभेद रत्नत्रय अर्थात् निश्चय मोक्षमार्ग कहा जाता है।

जीवादि सात तत्त्वों का और सच्चे देव-गुरु-शास्त्र का पच्चीस (२५) दोष रहित श्रद्धान करना सो व्यवहार सम्यगदर्शन है। प्रशम, संवेग, अनुकम्पा और आस्तिक्य इसके लक्षण हैं। क्रोधादि कषायों एवं विकारों के उपशम यानि शान्त होने रूप परिणाम “प्रशम” है। संसार से भयभीत एवं धर्म में रुचि रूप परिणाम “संवेग” है। प्राणी मात्र के प्रति दया का भाव होना “अनुकम्पा” है एवं धर्म, धर्म के फल तथा आत्म स्वरूप पर अकाट्य श्रद्धान होना आस्तिक्य है।

#### सम्यगदर्शन के आठ अंग

१. निःशंकित अंग - जिनेन्द्र देव कथित तत्त्वादि के विषय में तलवार पर चढ़ाए लोहे के पानी के समान निष्कम्प श्रद्धावान होकर सत्य मार्ग पर अविचल बढ़ते जाना निःशंकित अंग है। उदाहरण- बायाँ पैर

२. निःकांक्षित अंग - सत्य मार्ग पर चलते हुए क्षण भंगुर धन-सम्पदा, वैभव विषय-भोगों की प्राप्ति हेतु इच्छा नहीं करना निःकांक्षित अंग है। उदाहरण- दायाँ पैर

३. निर्विचिकित्सा अंग - रत्नत्रय से पवित्र मुनियों के मलीन शरीर को देखकर ग्लानि नहीं करना “निर्विचिकित्सा अंग” है। उदा.- बायाँ हाथ

४. अमूढ़ दृष्टि अंग - मिथ्यात्व को बढ़ाने वाले लौकिक चमत्कार पूर्ण कुमार्ग और कुमार्गस्थ व्यक्तियों का समर्थन, प्रशंसा आदि नहीं करना “अमूढ़ दृष्टि अंग” है। उदाहरण- पीठ

५. उपगूहन अंग - सन्मार्गी के दोषों एवं अपराधों को सबके सामने, लोक में प्रगट नहीं करना सम्यगदृष्टि का उपगूहन अंग है। उदा.- गुसांग

६. स्थितिकरण अंग- श्रद्धान एवं मार्ग से किसी कारण वश विचलित हुए प्राणियों को पुनः धर्म मार्ग में स्थिर करना “स्थितिकरण अंग” है। उदा.- दायाँ हाथ

७. वात्सल्य अंग - साधर्मी भाइयों के प्रति गोवत्स के समान कपट रहित आन्तरिक स्नेह का होना “वात्सल्य अंग” है। उदा.- हृदय

८. प्रभावना अंग - सत् साहित्य प्रकाशन, धार्मिक महोत्सव, दान, पूजा, तप आदि के द्वारा जिनधर्म की महिमा का प्रचार-प्रसार करना सम्यगदृष्टि मनुष्य का “प्रभावना अंग” है। उदा.- मुख

सम्यगदर्शन जिन पच्चीस दोषों से रहित होता है वे इस प्रकार हैं:-  
शंकादि आठ दोष, आठ मद, छः अनायतन और तीन मूढ़ताएँ।

#### - आठ दोष -

१. शंका - सच्चे देव गुरु शास्त्र एवं उनके वचनों पर संदेह करना ‘शंका’ नामक दोष है।

#### तत्त्वार्थ सूत्र ग्रंथ एक तिजोड़ी

‘तत्त्वार्थ सूत्र’ ग्रंथराज एक तिजोड़ी के सदृश है जिसमें दस खंड हैं और एक-एक खंड में अनेक लॉकर हैं। जिनमें माल भरा हुआ है। प्रथम अध्याय में ३३, द्वितीय में ५३, तृतीय में ३९, चतुर्थ में ४२, पंचम में ४२, षष्ठ्यमें २७, सप्तम में ३९, अष्टम में २६, नवम में ४७ और दसवें में ९ लॉकर हैं कुल मिलाकर दस अध्याय में ३५७ सूत्र लॉकर के सदृश हैं और इनको खोलने की चाबी हैं, आ.उमास्वामी, आ.पूज्यपाद स्वामी, आ.अकलंक स्वामी, आ.विद्यानंदी स्वामी। प्रतिदिन इस चाबी से एक-एक सूत्र रूपी लॉकर खोलकर क्या माल भरा है इसका चिंतन सामायिक में करना चाहिए।

शब्द पंगु  
जवाब न देना भी  
लाजवाब है

२. कांक्षा - धर्म साधना से विषय-भोगों की इच्छा करना 'कांक्षा' नामक दोष है।
३. विचिकित्सा - गुणवान पुरुषों के प्रति ग्लानि करना 'विचिकित्सा' नामक दोष है।
४. मूढ़ दृष्टि - सत्य-असत्य, तत्त्व-कुतत्त्व की पहचान नहीं होना, 'मूढ़ दृष्टि' नामक दोष है।
५. अनुपगृहन - अपने दोषों को छिपाकर दूसरे के दोषों को प्रगट करना 'अनुपगृहन' नामक दोष है।
६. अस्थितीकरण - सत्यथ से विचलित हुए धर्मात्मा को कषाय के वशीभूत हो धर्म में स्थिर न करते हुए, धर्म से भ्रष्ट कर देना, धर्म से च्युत कर देना 'अस्थितीकरण' दोष है।
७. अवात्सल्य - साधर्मी भाइयों एवं गुणीजनों से प्रेम न कर उनकी उपेक्षा एवं बुराई करना 'अवात्सल्य' नामक दोष है।
८. अप्रभावना - अपने आचरण से धर्म का उपहास करना "अप्रभावना" नामक दोष है।

#### - आठ मद -

१. ज्ञान मद - साहित्य-लेखन, वक्तृत्व आदि प्रतिभा विशेष का गर्व करना एवं अन्य की उपहास वृत्ति से उपेक्षा करना "ज्ञान मद" है।
२. पूजा अथवा कीर्ति मद - लौकिक ख्याति प्राप्त होने पर उसका अभिमान करना "पूजा मद" कहलाता है।
३. कुल मद - पिता की परम्परा क्षत्रिय आदि कुल के उज्ज्वल एवं समर्थ होने पर उसका अभिमान करना "कुल मद" कहलाता है।
४. जाति मद - मातृ-वंश के उज्ज्वल एवं शक्तिशाली होने पर माता, नाना आदि को लेकर अहंकार करना "जाति मद" है।
५. बल मद - शारीरिक बल एवं अपने अधीन रहने वाली शक्ति पर अभिमान करना "बल मद" है।
६. रूप मद - अपने शरीर की सुन्दरता, रूप, रंग, निरोगता हृष्ट-पुष्टि आदि का अभिमान करना "रूप मद" है।
७. धन मद - धन सम्पत्ति, वैभव से सम्पन्न होने पर उसका अभिमान करना निर्धनों की उपेक्षा करना "धन मद" है।
८. तप मद - विशेष तपश्चर्या एवं सदाचार के परिपालन में समर्थ होने पर उसका घमण्ड करना "तप मद" है।

#### - छह अनायतन -

१. असत्य देव भक्ति - क्रोध, मान, माया, लोभ, कषाय सहित परिग्रही देवों को मानना, उनकी पूजा-स्तुति आदि करना।
२. असत्य गुरु भक्ति - विषय लोलुपी, विकार ग्रस्त, गुरुओं की भक्ति करना, उनको नमस्कार करना इत्यादि।
३. असत्य धर्म भक्ति - हिंसा, मदिरा पान, गाँजा सेवन आदि पाप कार्यों को धर्म मानकर स्वीकारना तथा उसमें भक्ति रखना।
४. असत्य देव उपासक भक्ति - मिथ्या देवों की भक्ति करने वाले भक्तों की संगति करना एवं उनके गलत कार्यों में सहयोग प्रदान करना।
५. असत्य गुरु उपासक भक्ति - मिथ्या गुरु के सेवकों की संगति करना, उनके कार्यों में सहयोग करना, दान देना आदि।
६. असत्य धर्म उपासक भक्ति - मिथ्या धर्म के उपासकों की संगति करना, उनके प्रचार-प्रसार में सहयोग करना।

#### - तीन मूढ़ता -

१. देव मूढ़ता - मनोकामना की पूर्ति हेतु, राग-द्वेष रूपमल से मलीन देवी-देवताओं के समक्ष बली चढ़ाना, अर्घ चढ़ाना, खाद्य सामग्री चढ़ाना, अनेक प्रकार से स्तुति करना देव मूढ़ता है।
२. लोक मूढ़ता - अस्थ श्रद्धा से अनेक अविवेक पूर्ण कार्यों में धर्म मानना जैसे नदी में स्नान करने से, अग्नि में कूदने से, पहाड़ से गिरने इत्यादि कार्यों में धर्म मानना लोक मूढ़ता है।
३. गुरु मूढ़ता - कषाय के वशीभूत हो विभिन्न प्रकार के भेष धारण करने वाले, अभिमानी, विषय लोलुपी, अपने को गुरु मानने वाले व्यक्तियों पर श्रद्धा रखना, उनकी स्तुति, पूजा आदि करना "गुरु मूढ़ता" कहलाती है।
- ० सम्यग्दृष्टि जीव प्रथम नरक छोड़ शेष नरकों में, भवनवासी-व्यन्तर-ज्योतिष देवों में, स्त्रीवेद-नपुंसक वेद में, स्थावर कायिकों में, विकलत्रयों में, पशु पर्याय में जन्म नहीं लेते।
- ० तीन काल और तीन लोक में जीवों का सम्यक्त्व के समान कुछ भी कल्याणकारी नहीं है तथा मिथ्यात्व के समान अकल्याणकारी भी कोई नहीं है। शुद्ध सम्यग्दृष्टि जीव कान्ति, प्रताप, विद्या, वीर्य, यशोवृद्धि, विजय, वैभववान, उच्चकुली, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के साधक तथा मनुष्यों में शिरोमणि होते हैं।

## पाठ्यक्रम - २२

२२ ब

### कर्मों की अवस्थाएँ - दसकरण विवेचन

जीव के मन-वचन और काय की क्रिया के निमित्त से कर्म योग्य पुद्गल परमाणु चारों ओर से आकृष्ट हो जाते हैं तथा कषायों के कारण जीवात्मा से चिपक जाते हैं। तथा यथायोग्य काल में वे कर्म अपना अच्छा-बुरा फल देकर पके हुए फल के समान आत्मा से पृथक् हो जाते हैं अर्थात् झड़ जाते हैं। जीव ने जिस रूप में (प्रकृति आदि) कर्म बंध किया वे उसी रूप में उदय में आवें, फल देवें यह कोई जरूरी नहीं है। जीव के शुभाशुभ भावों के अनुसार कर्मों में बहुत कुछ परिवर्तन संभव है। जीव के शुभाशुभ भावों की अपेक्षा उत्पन्न होने वाली कर्मों की विविध अवस्थाओं को करण कहते हैं। करण दस होते हैं -

- १. बंध,
- २. सत्ता,
- ३. उदय,
- ४. उत्कर्षण,
- ५. अपकर्षण,
- ६. उदीरणा,
- ७. संक्रमण,
- ८. उपशम,
- ९. निधत्ति,
- १०. निकाचित।

**बन्ध :-** द्वित्व का त्याग करके एकत्व की प्राप्ति का नाम बन्ध है अर्थात् जिस प्रकार एक साथ पिघलाए हुए स्वर्ण और चाँदी का एक पिण्ड बनाए जाने पर परस्पर प्रदेशों के मिलने से दोनों में एकरूपता मालूम होती है उसी प्रकार बन्ध की अपेक्षा जीव और कर्मों के प्रदेशों के परस्पर मिलने से दोनों में एकरूपता मालूम होती है।

यह बन्ध प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश की अपेक्षा चार भेद वाला है। इनका वर्णन पूर्व में किया जा चुका है। १४८ कर्म प्रकृतियों में से १२० प्रकृति बंध योग्य होती हैं।

चौदह गुणस्थानों में बंधने योग्य कर्म प्रकृतियाँ हैं (१) मिथ्यात्व में ११७, (२) सासादन में १०१, (३) मिश्र में ७४, (४) अविरत सम्यक्त्व में ७७, (५) देश विरत में ६७, (६) प्रमत्तविरत में ६३, (७) अप्रमत्त विरत में ५९, (८) अपूर्व करण में ५८, (९) अनिवृत्ति करण में २२, (१०) सूक्ष्म सांपराय में १७, (११) उपशांत मोह में १, (१२) क्षीण मोह में १, (१३) सयोग केवली में १, (१४) अयोग केवली में ० शून्य।

**सत्त्व( सत्ता ):-** कर्म बंधने के दूसरे समय से लेकर फल देने के पहले समय तक कर्म आत्मा में अपना अस्तित्व बनाए रखते हैं, कर्मों की इस अवस्था को सत्ता कहते हैं। सत्त्व योग्य कर्म प्रकृतियाँ 148 हैं।

**चौदह गुणस्थानों में सत्त्व योग्य कर्म प्रकृति क्रमशः** निम्नलिखित हैं। पहले आठवें गुणस्थानों तक क्रमशः १४८, १४५, १४७, १४८, १४७, १४६, १४६, १३८ एवं नवमें गुणस्थानों के नौ भागों में १३८, १२२, ११४, ११३, ११२, १०६, १०५, १०४, १०३ तथा दसवें गुणस्थानों से तेरहवें गुणस्थानों तक १०२, १०१, ८५ चौदहवें गुणस्थानों के उपान्त समय में ८५ एवं अंत समय में १३ अथवा १२ कर्म प्रकृतियों की सत्ता रहती है।

**उदय :-** द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के अनुसार कर्मों का फल देना उदय कहलाता है अथवा कर्मों की अपना फल देने की समर्थता रूप अवस्था को प्राप्त होना उदय का लक्षण है। उदय में आने वाले पुद्गल अपनी-अपनी प्रकृति के अनुसार फल देकर झड़ जाते हैं।

बन्ध योग्य प्रकृतियों में सम्यक् मिथ्यात्व एवं सम्यक्त्व प्रकृति मिलाने पर उदय योग्य १२२ प्रकृतियाँ हो जाती हैं। मिथ्यात्वादि गुणस्थानों में क्रमशः उदय योग्य प्रकृतियों की संख्या निम्न प्रकार से है ११७, १०६, १००, १०४, ८७, ८१, ७६, ७२, ६६, ६०, ५९, ५७, ४२ तथा १३ है।

**उत्कर्षण :-** कर्मों की स्थिति व अनुभाग में वृद्धि का होना उत्कर्षण कहलाता है। अर्थात् नवीन बंध के संबंध से पूर्व की स्थिति में से कर्म परमाणुओं की स्थिति का बढ़ाना उत्कर्षण है। जैसे किसी मनुष्य अथवा तिर्यञ्च ने सौधर्म स्वर्ग की २ सागर प्रमाण आयु का बंध किया बाद में उत्कर्षण कर सोलहवें अच्युत स्वर्ग की २२ सागर की आयु बांध ली। विशुद्ध परिणामों से शुभ कर्मों का एवं संक्लेश भावों से अशुभ कर्मों में उत्कर्षण होता है।

**अपकर्षण :-** कर्मों की स्थिति व अनुभाग में हानि का होना 'अपकर्षण' है। जैसे राजा श्रेणिक ने सातवें नरक की ३३ सागर प्रमाण आयु का बंध किया बाद में विशुद्ध परिणामों से स्थिति घटाकर प्रथम नरक की ८४ हजार वर्ष प्रमाण आयु कर ली। विशुद्ध

परिणामों से अशुभ कर्मों में तथा संक्लेश परिणामों से शुभ कर्मों में अपकर्षण होता है।

**उदीरणः-** जिन कर्मों का उदय काल प्राप्त नहीं हुआ है उनको उपाय विशेष से पचाना अर्थात् अपकर्षण कर उदय में दे देना उदीरण है। जैसे आप्रादि फल प्रयास विशेष से समय से पूर्व ही पका लिये जाते हैं। वैसे ही तप आदि साधनों के बल पर कर्मों का अपकर्षण करण द्वारा स्थिति कम करके नियत समय के पूर्व ही भोग कर क्षय किया जा सकता है।

**संक्रमण :-** संक्रमण का अर्थ परिवर्तन है। एक कर्म की प्रकृति आदि का दूसरे सजातीय कर्म में परिवर्तन हो जाने को संक्रमण कहते हैं। यह संक्रमण किसी एक मूल प्रकृति की उत्तर प्रकृतियों में ही होता है। मूल प्रकृतियों में परस्पर संक्रमण नहीं होता अर्थात् ज्ञानावरण बदल कर दर्शनावरण नहीं हो सकता इत्यादि। ये संक्रमण पाँच प्रकार के होते हैं – उद्वेलन संक्रमण, विध्यात् संक्रमण, अधः प्रवृत्त संक्रमण, गुण संक्रमण और सर्व संक्रमण।

**उपशम :-** कर्मों के विद्यमान रहते हुए भी, उदय में आने से रोक देना “उपशम” कहलाता है। इस अवस्था में अपकर्षण, उत्कर्षण और संक्रमण तो संभव है किन्तु उदय, उदीरण संभव नहीं है। उपशम अवस्था हटते ही पुनः कर्म अपना फल दे सकते हैं, जैसे बादल से ढका हुआ सूर्य, बादलों के हटते ही पुनः प्रकाश और प्रताप रूप कार्य करने में समर्थ हो जाता है।

**निधत्ति:-** कर्म की वह अवस्था जिसमें उदीरण और संक्रमण का सर्वथा अभाव रहता है किन्तु उत्कर्षण और अपकर्षण हो सके निधत्ति कहलाती है।

**निकाचित :-** कर्म की वह अवस्था जिसमें उत्कर्षण, अपकर्षण, उदीरण और संक्रमण चारों ही न हो सके। निकाचित कहलाती है। इस प्रकार जैन सिद्धान्त में प्राणियों के अपने कर्मों के फल भोग तथा पुरुषार्थ द्वारा उसको बदलने की शक्ति इन दोनों में भली-भाँति समन्वय स्थापित किया है। **दस करणों के दृष्टान्त -**

१. **बन्ध** – १७ अगस्त २००५ को किसी फैक्ट्री में १० वर्ष के लिए नौकरी पक्की हो जाना।
२. **सत्त्व** – १७ अगस्त २००५ से १ अक्टूबर २०१५ तक का समय।
३. **उदय** – २ अक्टूबर २००५ से नौकरी पर जाना प्रारम्भ हो जाना।
४. **उपशम** – फैक्ट्री तो पहुँच गए किन्तु फैक्ट्री के ताले की चाबी न मिलने से कुछ समय रुकना पड़ा।
५. **उदीरण** – १ अक्टूबर २००५ को ही फैक्ट्री में बुला लिया।
६. **अपकर्षण** – १० वर्ष के लिए नौकरी मिली थी, किन्तु बाद में ९ वर्ष के लिए कर दी।
७. **उत्कर्षण** – १० वर्ष के लिए नौकरी मिली थी, किन्तु बाद में ११ वर्ष के लिए हो गई।
८. **संक्रमण** – फैक्ट्री मालिक ने दूसरी फैक्ट्री में भेज दिया।
९. **निधत्ति** – १ अक्टूबर २००५ से नौकरी पर गए न मालिक ने दूसरी फैक्ट्री भेजा यथा समय गए यथास्थान पर रहे।
१०. **निकाचित** – १ अक्टूबर २००५ से नौकरी पर गए न मालिक ने दूसरी फैक्ट्री भेजा, न ही नौकरी ९ वर्ष की और न ही नौकरी ११ वर्ष की। अर्थात् कार्य सही समय पर सही स्थान में सही समय तक चलता रहा।

जिस प्रकार किसी को मृत्यु दण्ड मिला हो तो राष्ट्रपति उसे अभ्यदान दे सकता है अर्थात् मृत्युदण्ड को वापस ले सकता है। उसी प्रकार आचार्य श्री वीरसेनस्वामी, श्री ध्वला, पुस्तक ६ में कहते हैं–**जिणबिंबदंसणेण पिधत्तणिकाचिदस्म वि मिच्छतादिकम्कलावस्म खय दंसणादे।** अर्थात् जिनबिम्ब के दर्शन से निधत्ति और निकाचित रूप भी मिथ्यात्वादि कर्मकलाप का क्षय होता देखा जाता है तथा नवम गुणस्थान में प्रवेश करते ही दोनों प्रकार के कर्म स्वयमेव समाप्त हो जाते हैं।

जिनवाणी जग मैया जनम दुख मेट दो – २  
जनम दुख मेट दो मरण दुख मेट दो॥ जिनवाणी  
कुंद-कुंद से पुत्र तुम्हारे, गणधर जैसे भैया,  
समवशरण-सा महल तुम्हारा, तीर्थकर से सैया॥

जनम दुख मेट दो  
बहुत दिनों से भटक रहा हूँ ज्ञान बिना मैया  
निर्मल ज्ञान प्रदान जो कर दो, तुम हो सच्ची मैया॥

जनम दुख मेट दो  
गुण स्थान का अनुभव हमको, हो जावेगा मैया,  
तुमको हम सब शीश नबावें, तुम हो सबकी मैया॥

जनम दुख मेट दो  
मोक्ष मार्ग पर चल क्रम-क्रम से, ऐसे कर्म खिवैया,  
जनम-मरण दुख मेट हमारा इतनी विनती मैया॥

जनम दुख मेट दो  
सात तत्त्व छः द्रव्य बताए हो उपकारी मैया,  
जो भी शरण तुम्हारे आया, पार लगा दी नैया॥

## कहानी- भावना का चमत्कार

देवपद, खेवपद नाम के दो बालक गरीबी के साथ अपना जीवनयापन कर रहे थे। बचपन से ही माता-पिता ने उन्हें धर्म के संस्कार दिये थे। संस्कारित वे बालक प्रतिदिन मंदिर जाते एवं शास्त्रसभा में बैठकर प्रवचन सुनते थे। एक दिन प्रवचन में सम्मेदशिखरजी सिद्धक्षेत्र का महत्त्व सुना तभी से उनके मन में शिखरजी के दर्शन की तीव्र अभिलाषा होने लगी। पर वे यह विचार कर कि यह संभव नहीं हो सकेगा, मन मारकर रह जाते थे।

एक दिन उस नगर के सेठ जी ने सम्मेदशिखर जाने का मन बनाया तथा घोषणा की, कि जो भी नगरवासी हमारे साथ चलना चाहे वह साथ में चल सकता है। दोनों बच्चे भी सेठ जी के पास पहुँचे और उनके सामने अपनी भावना रखी तथा यह भी कह दिया हमारे पास कुछ भी पैसा नहीं है। अतः हम आपकी सेवा चाकरी करेंगे। बदले में आप हमारे लिए दो वक्त का भोजन दे देना। सेठ जी ने दोनों को साथ चलने की अनुमति दे दी। अतः खुशी-खुशी वे अपनी माँ के पास पहुँचे। उनसे आशीष लेकर सेठ जी के यात्रा संघ के साथ शिखरजी की ओर चल पड़े। बैलगाड़ी आदि से यात्रा होने से लगभग एक माह बाद सेठ जी संघ सहित शिखरजी पहुँचे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने दोनों बच्चों को बुलाकर कहा-हम लोग रात्रि में ही तीन बजे गिरिराज सम्मेदशिखर जी वंदनार्थ जाएँगे। अतः तुम दोनों को यहाँ नीचे रहकर सारी सामग्री की रक्षा करनी है तथा भोजन की सामग्री तैयार करके रखनी होगी। सेठ जी का आदेश सुनकर दोनों भाई दंग रह गए। बहुत दुःखी हुए और सोचने लगे कि यह क्या? हम लोग कैसे वंदना करेंगे? फिर भी आज्ञा तो पालनी ही थी।

कुछ दिन व्यतीत होने पर जब संघ वापस जाने के लिए तैयार होने लगा तब दोनों बच्चों ने सोचा कि अरे हमने तो अभी एक भी वंदना नहीं की। क्या करें, सेठ जी से कैसे कहें? अतः दोनों भाइयों ने योजना बनाई और रात्रि में जब सब सो गए तो दोनों बच्चे चुपचाप वंदना के लिए निकल पड़े। सेठ जी भी नियत समय अनुसार वंदना को निकल गए। जैसे ही वे सर्वप्रथम गौतम गणधर की टोंक पर पहुँचे तो उनकी आँखें खुली की खुली रह गईं। उन्होंने क्या देखा कि किसी ने टोंक पर रत्नों की राशि ( पुंज ) चढ़ाए हुए हैं। सेठ सोचने लगे मुझसे अधिक धनवान् ऐसा कौन-सा सेठ आया है जिसने रत्न चढ़ाये। आगे बढ़ते-बढ़ते उसने पूरी वंदना की तो सभी टोंक पर रत्नों के दो-दो ढेर लगे मिले।

सेठ जलदी-जलदी वंदना कर नीचे आया तथा धर्मशाला के मैनेजर को बुलाकर पूछा-बताओ ऐसा कौन-सा सेठ यहाँ आया है जिसने रत्नों से शिखरजी की वंदना की। मैनेजर बोला-मालिक आपके सिवाय और कोई सेठ यहाँ नहीं आया आपको भ्रम हुआ है। लेकिन सभी यात्रियों ने रत्नों की बात की तो खोज होने लगी कि सेठ जी के पहले कौन वंदना करने गया। किसी कर्मचारी ने दोनों बालकों को ऊपर जाते हुए देख लिया था। अतः उसने बताया कि आपके कर्मचारी वे दोनों बालक देवपद व खेवपद वंदना करने गए थे। उन्होंने बुलाकर पूछा तो दोनों ने मुण्डी नीची कर ली और हाथ जोड़कर जवाब दिया कि हमारे मन में वंदना के तीव्र भाव थे, चूंकि आज संघ लौटने वाला है और हमारी एक भी वंदना नहीं हुई थी। अतः आपकी आज्ञा लिए बिना ही हम लोगों ने रात्रि में वंदना कर ली थी। किन्तु भोजन पूर्णतः तैयार है फिर भी आप हमें क्षमा करें। तब सेठ जी ने पूछा ये तो बताओ तुमने भगवान् के चरणों में क्या चढ़ाया? तो सहज रूप में बता दिया कि हम जब घर से आ रहे थे तो माँ ने कुछ ज्वार के दाने हमारे पास रख दिये थे तो चावल न होने की वजह से हमने वे ही दाने एक-एक मुद्दी टोकों पर चढ़ाए थे। सेठ जी ने कहा तुम झूठ बोल रहे हो सही-सही बताओ क्या चढ़ाया। वे कहने लगे सेठ जी विश्वास कीजिए, यदि विश्वास नहीं होता तो हमारे पास अभी भी थोड़ी सी ज्वार बची है सो आपको दिखा देते हैं। उन्होंने अपने पास रखी ज्वार निकालकर सेठ जी को दिखा दी। ज्वार देखते ही सेठ जी सारा मामला समझ गए कि इनकी भक्ति और आस्था के प्रभाव से ही वे ज्वार के दाने मोती बन गए। सच्ची भक्ति और श्रद्धा तो इनकी थी। सेठ जी की आँखों में आँसू आ गए और उन्होंने दोनों बच्चों को अपने गले से लगा लिया। तथा आगे चलकर अपनी सारी सम्पत्ति उन्हीं बालकों को देकर स्वयं ने गृह त्याग कर संयम को अंगीकार किया। सुनते हैं आगे बालकों ने संपत्ति का खर्च धर्म क्षेत्र पर करते हुए, सैकड़ों जिन प्रतिमा, जिनालयों का निर्माण किया। देवगढ़, ललितपुर में बनी प्रतिमाएँ उन्हीं के द्वारा स्थापित की गई हैं ऐसा इतिहास मिलता है।

**सारांश :** प्रतिदिन मंदिर जाना चाहिए एवं जिनवाणी का अध्ययन करना चाहिए। मंदिर जी अथवा जिनदर्शन को कभी भी खाली हाथ नहीं जाना चाहिए। अपनी श्रद्धा को मजबूत रखना चाहिए।

# एकीभाव स्तोत्र - वादीराज जी मुनिराज

पादन्यासादपि च पुनतो, यात्रया ते त्रिलोकीं, हेमाभासो भवति सुरभिः श्रीनिवासश्च पद्मः ।  
सर्वाङ्गेण स्पृशति भगवंस्त्वव्यशेषं मनो मे, श्रेयः किं तत्, स्वयमहरहर्वन्न मामभ्युपैति ॥७ ॥

अर्थ : हे जिनेन्द्र ! ( यात्रया ) विहार के द्वारा ( त्रिलोकीम् ) तीनों लोकों को ( पुनतः ) पवित्र करने वाले ( ते ) आपके ( पादन्यासात् अपि ) चरणों के रखने मात्र से ही जब ( पद्म ) कमल ( हेमाभासः ) सुवर्ण-सी कान्ति वाला ( सुरभिः ) सुगच्छित ( च ) और ( श्रीनिवासः ) लक्ष्मी का गृह-शोभा का स्थान हो जाता है । तब ( हे भगवन् ! ) हे स्वामिन् ! ( त्वयि मे अशेषम् मनः सर्वाङ्गेण स्पृशति 'सति' ) आप में मेरे समस्त मन को सर्व अंगों के द्वारा स्पर्श करने पर ( तत् ) वह ( किं श्रेयः ? ) कौन-सा कल्याण है ( यत् ) जो ( माम् ) मुझे ( अहरहः ) प्रतिदिन ( स्वयं ) अपने आप ( न अभ्युपैति ) प्राप्त नहीं होता है । अर्थात् होता ही है ।

पश्यन्तं त्वद्वचनममृतं भक्तिपात्र्या पिबन्तं, कर्मारण्यात्, पुरुषमसमा, नन्दधामप्रविष्टम् ।

त्वां दुर्वार, स्मरमदहरं, त्वत्प्रसादैकभूमिं, कूराकाराः, कथमिव रुजा, कण्टका निर्लुठन्ति ॥८ ॥

अर्थ : हे नाथ ! ( कर्मारण्यात् ) कर्मरूपी वन से ( असमानन्दधाम-प्रविष्टम् ) अनुपम सुख के स्थान मोक्ष में प्रविष्ट हुए तथा ( दुर्वारस्मरमदहरं ) दुर्जय कामदेव के मद को हरण करने वाले आपको ( पश्यन्तं ) देखने वाले और ( भक्तिपात्र्या ) भक्तिरूपी कटोरों से ( त्वद्वचनं अमृतं पिबन्तं ) आपके वचनरूपी अमृत को पीने वाले ( त्वत्प्रसादैकभूमिम् ) आपकी प्रसन्नता के स्थानभूत ( पुरुषं ) पुरुष को ( कूराकाराः ) भयंकर आकार वाले ( रुजाकण्टकाः ) रोगरूपी काँटं ( कथमिव ? ) किस तरह ( निर्लुठन्ति ) सता सकते हैं-पीड़ा दे सकते हैं ? अर्थात् नहीं दे सकते ।

पाषाणात्मा तदितरसमः, केवलं रत्नमूर्तिर् मानस्तम्भो, भवति च परस्, तादृशो रत्नवर्गः ।

दृष्टिप्राप्तो, हरति स कथं, मानरोगं नराणां, प्रत्यासत्ति, यदि न भवतस्तस्य तच्छक्तिहेतुः ॥९ ॥

अर्थ : हे देव ! ( पाषाणात्मा ) पत्थररूप ( मानस्तम्भः ) मानस्तम्भ ( तदितरसमः ) अन्य पत्थर के स्तम्भ समान ही है ( केवलम् ) सिर्फ ( रत्नमूर्तिः ) रत्नमयी है परन्तु ( परः रत्नवर्गः ) दूसरे रत्नों का समूह वैसा ही है-ऐसा होने पर ( यदि ) अगर ( तस्य ) उस मानस्तम्भ की ( तत्शक्तिहेतुः ) वैसी शक्ति में कारणरूप ( भवतः ) आपकी ( प्रत्यासत्तिः ) निकटता न होती तो ( सः ) वह मानस्तम्भ ( दृष्टिप्राप्तः ) देखने मात्र से ही ( नराणाम् ) मनुष्यों के ( मानरोगं ) मान-अहंकाररूपी रोग को ( कथं हरति ? ) कैसे हर सकता है ? अर्थात् नहीं हर सकता ।

हृद्यः प्राप्तो, मरुदपि भवन्, मूर्तिशैलोपवाही, सद्यः पुंसां, निरवधिरुजा, धूलिबन्धं धुनोति ।

ध्यानाहूतो हृदयकमलं यस्य तु त्वं प्रविष्टम्, तस्याशक्यः, क इह भुवने, देव लोकोपकारः ॥१० ॥

अर्थ : ( देव ! ) हे स्वामिन् ! जब ( भवन्मूर्तिशैलोपवाही ) आपके शरीररूपी पर्वत के पास से बहने वाली ( हृद्यः ) मनोहर ( मरुत् अपि ) हवा भी ( प्राप्तः 'सन्' ) प्राप्त होती हुई ( पुंसां ) पुरुषों के ( निरवधिरुजाधूलिबन्धम् ) अपरिमित रोगरूपी धूली के संसर्ग को ( सद्यः ) शीघ्र ही ( धुनोति ) दूर कर देती है ( तु ) तब ( ध्यानाहूतः ) ध्यान के द्वारा बुलाए गए ( त्वम् ) आप ( यस्य ) जिसके ( हृदयकमलं ) हृदयरूपी कमल में ( प्रविष्टः ) प्रविष्ट हुए हैं ( तस्य ) उस पुरुष को ( इहभुवने ) इस संसार में ( कः ) कौन-सा ( लोकोपकारः ) लोगों का उपकार ( अशक्यः ) अशक्य है-नहीं करने योग्य है अर्थात् कोई भी नहीं ।

मंगलं भगवान् वीरो मंगलं गौतमो गणी ।

मंगलं कुन्दकुन्दाद्यो जैन धर्मोस्तु मंगलं ॥

प्रश्न उत्पन्न होता है कि मंगलाचरण में भगवान महावीर फिर गौतम स्वामी और फिर आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी का नाम आता है जबकि आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी से पूर्व भी आचार्य धरसेन, आचार्य पुष्पदंत, भूतबली, अर्हत्बलि, आचार्य जिनसेन आदि इनसे बड़े-बड़े आचार्य हुए फिर उनको क्यों छोड़ दिया ?

**उदाहरण :** जैसे रास्ते में चलते हैं । एक ही मार्ग हो तो किसी से कुछ नहीं पूछते, पर जब दो रास्ते आते हैं तो पूछते हैं कि ये रास्ता कहाँ जाता है । इसी प्रकार जैन धर्म दिग्म्बर, श्वेताम्बर में जब विभाजित हो रहा था तब कुन्दकुन्द आचार्य ने हमें सही दिग्म्बर मार्ग बतलाया था, अतः उनका नाम मंगलाचरण में लिया जाता है ।

## ९. बारह भावना

कविवर मंगतराय जी

दोहा

वर्दुँ श्री अरहंत-पद, वीतराग विज्ञान।  
वरण् बारह भावना, जग जीवन हित जान॥१॥

विष्णुपद छन्द

कहाँ गए चक्री जिन जीता, भरत खण्ड सारा।  
कहाँ गये वह राम-रु-लक्ष्मण, जिन रावण मारा॥  
कहाँ कृष्ण रुक्मणि सतभामा, अरु संपत्ति सगरी।  
कहाँ गये वह रंगमहल अरु, सुवरन की नगरी॥२॥  
नहीं रहे वह लोभी कौरव, जूँझ मरे रन में।  
गये राज तज पांडव वन को, अगनि लगी तन में॥  
मोह-नींद से उठ रे चेतन, तुझे जगावन को।  
हो दयाल उपदेश करें गुरु, बारह भावन को॥३॥

## १. अनित्य भावना

सूरज-चाँद छिपै निकलै ऋतु, फिर-फिर कर आवै।  
प्यारी आयु ऐसी बीतै, पता नहीं पावै।  
पर्वत पतित-नदी-सरिता-जल बहकर नहिं हटता।  
स्वास चलत यों घटै काठ ज्यों, आरे सों कटता॥४॥  
ओस-बूँद ज्यों गले धूप में, वा अंजुलि पानी।  
छिन-छिन यौवन छीन होत है क्या समझै प्रानी॥  
इंद्रजाल आकाश नगर सम जग-संपत्ति सारी।  
अथिर रूप संसार विचारो सब नर अरु नारी॥५॥

## २. अशरण भावना

काल सिंह ने मृग- चेतन को धेरा भव वन में।  
नहीं बचावनहारा कोई यों समझो मन में॥  
मंत्र तंत्र सेना धन-संपत्ति, राज पाट छूटै।  
वश नहिं चलता काल लुटेरा, काय नगरी लूटै॥६॥  
चक्ररत्न हलधर-सा भाई, काम नहीं आया।  
एक तीर के लगत कृष्ण की विनश गई काया॥  
देव धर्म गुरु शरण जगत में, और नहीं कोई।  
भ्रम से फिरै भटकता चेतन, यूँ ही उमर खोई॥७॥

## ३. संसार भावना

जन्म-मरन अरु जरा-रोग से, सदा दुखी रहता।  
द्रव्य क्षेत्र अरु काल भाव भव-परिवर्तन सहता॥  
छेदन-भेदन नरक पशुगति, वध बंधन सहना।  
राग-उदय से दुख सुरगति में, कहाँ सुखी रहना॥८॥

भोगि पुण्य फल हो इक इंद्री, क्या इसमें लाली।  
कुतवाली दिनचार वही फिर, खुरपा अरु जाली॥  
मानुष-जन्म अनेक विपत्तिमय, कहीं न सुख देखा।  
पंचम गति सुख मिले शुभाशुभ को मेटो लेखा॥९॥

## ४. एकत्व भावना

जनमे-मरे अकेला चेतन, सुख-दुख का भोगी।  
और किसी का क्या इक दिन, यह देह जुदी होगी॥  
कमला चलत न पैंड जाय, मरघट तक परिवार।  
अपने-अपने सुख को रोवैं, पिता पुत्र दारा॥१०॥  
ज्यों मेले में पंथीजन मिल नेह फिरैं धरते।  
ज्यों तरुवर पै रैन बसेरा पंछी आ करते॥  
कोस कोई दो कोस कोई उड़ फिर थक-थक हारे।  
जाय अकेला हंस संग में, कोई न पर मारे॥११॥

## ५. अन्यत्व भावना

मोह-रूप मृग-तृष्णा जग में, मिथ्या जल चमके।  
मृग चेतन नित भ्रम में उठ-उठ, दौड़े थक थकके॥  
जल नहिं पावै प्राण गमावे, भटक-भटक मरता।  
वस्तु पराई माने अपनी, भेद नहीं करता॥१२॥  
तू चेतन अरु देह अचेतन, यह जड़ तू ज्ञानी।  
मिले अनादि यतनतें बिछुड़े, ज्यों पय अरु पानी॥  
रूप तुम्हारा सबसों न्यारा, भेद ज्ञान करना।  
जौ लों पौरुष थकै न तौ लों उद्यम सों चरना॥१३॥

## ६. अशुचि भावना

तू नित पोखै यह सूखे ज्यों, धोवे त्यों मैली।  
निश-दिन करै उपाय देह का, रोग-दशा फैली॥  
मात-पिता रज-वीरज मिलकर, बनी देह तेरी।  
मांस हाड़ नश लहू राथ की, प्रगट व्याधि धेरी॥१४॥  
काना पौड़ा पड़ा हाथ यह चूसे तो रोवै।  
फलै अनंत जु धर्म ध्यान की, भूमि-विषै बोवै॥  
केसर चंदन पुष्प सुगंधित, वस्तु देख सारी।  
देह परसते होय अपावन, निश-दिन मल जारी॥१५॥

## ७. आस्त्रव भावना

ज्यों सर जल आवत मोरी त्यों, आस्त्रव कर्मन को।  
दर्वित जीव प्रदेश गहै जब पुद्गल भरमन को॥  
भावित आस्त्रव भाव शुभाशुभ, निशदिन चेतन को।  
पाप-पुण्य के दोनों करता, कारण बंधन को॥१६॥  
पन-मिथ्यात योग-पंद्रह द्वादश-अविरत जानो।  
पंच रु बीस कषाय मिले सब, सत्तावन मानो॥

मोह- भाव की ममता टारै, पर परणति खोते।  
करै मोक्ष का यतन निरास्त्रव, ज्ञानी जन होते ॥१७॥

#### ८. संवर भावना

ज्यों मोरी में डाट लगावे, तब जल रुक जाता।  
त्यों आस्त्रव को रोके संवर, क्यों नहिं मन लाता॥  
पंच महाब्रत समिति-गुप्तिकर वचन काय मन को।  
दशविध-धर्म परीषह-बाईस, बारह भावन को ॥१८॥

यह सब भाव सन्तावन मिलकर, आस्त्रव को खोते।  
सुपन दशा से जागो चेतन, कहाँ पड़े सोते॥  
भाव शुभाशुभ रहित शुद्ध-भावन संवर पावै।  
डाँट लगत यह नाव पड़ी मँझधार पारजावै ॥१९॥

#### ९. निर्जरा भावना

ज्यों सरवर जल रुका सूखता, तपन पड़े भारी।  
संवर रोके कर्म, निर्जरा है सोखनहारी॥  
उदय भोग सविपाक समय, पक जाय आम डाली।  
दूजी है अविपाक पकावै, पालविषै माली ॥२०॥

पहली सबके होय नहीं कुछ, सरै काज तेरा।  
दूजी करै जू उद्यम करकै, मिटै जगत फेरा॥  
संवर सहित करो तप प्रानी, मिले मुक्त रानी।  
इस दुलहिन की यही सहेली, जाने सब ज्ञानी ॥२१॥

#### १०. लोक भावना

लोक-अलोक अकाश माँहिं थिर, निराधार जानो।  
पुरुषरूप कर-कटी भये घट् द्रव्यन सों मानो॥  
इसका कोई न करता हरता, अमिट अनादि है।  
जीव अरु पुद्गल नाचै यामैं, कर्म उपाधि है ॥२२॥

पाप-पुण्य सों जीव जगत में, नित सुख दुख भरता।  
अपनी करनी आप भैर सिर, औरन के धरता ॥

मोह कर्म को नाश, मेटकर सब जग की आसा।  
निज पद में थिर होय लोक के, शीश करो वासा ॥२३॥

#### ११. बोधि-दुर्लभ भावना

दुर्लभ है निगोद से थावर, अरु त्रस गति पानी।  
नरकाया को सुरपति तरसे सो दुर्लभ प्रानी॥  
उत्तम देश सुसंगति दुर्लभ, श्रावक कुल पाना।  
दुर्लभ सम्यक्, दुर्लभ संयम, पंचम गुणठाना ॥२४॥

दुर्लभ रत्नत्रय आराधन दीक्षा का धरना।  
दुर्लभ मनिवर के व्रत पालन, शुद्ध भाव करना॥  
दुर्लभ से दुर्लभ है चेतन, बोधि ज्ञान पावै।  
पाकर केवलज्ञान नहीं फिर, इस भव में आवै ॥२५॥

#### १२. धर्म भावना

धर्म 'अहिंसा परमो धर्मः' ही सच्चा जानो।  
जो पर को दुःख दे, सुख माने, उसे पतित मानो॥  
राग-द्वेष मद मोह घटा आतम रुचि प्रकटावे।  
धर्म-पोत पर चढ़ प्राणी भव सिंधु पार जावे ॥२६॥

वीतराग सर्वज्ञ दोष बिन, श्रीजिन की वानी।  
सप्त तत्व का वर्णन जामें, सबको सुखदानी॥  
इनका चिंतवन बार-बार कर, श्रद्धा उर धरना।  
'मंगत' इसी जतनतैं इक दिन, भवसागर-तरना ॥२७॥

.....

मुश्किलें दिल के इरादे आजमाती हैं,  
स्वप्न के परदे निगाहों से हटाती हैं।  
हौसले मत हार गिरकर ओ मुसाफिर,  
ठोकरें इंसान को चलना सिखाती हैं ॥

#### कुशल व्यापारी कौन?

दो व्यापारी हैं, एक व्यापारी १० रुपए की छोटी-सी राशि लगाकर तथा दूसरा व्यापारी १०,००० रुपए की विशाल राशि लगाकर व्यापार प्रारंभ करते हैं। सायंकाल दोनों व्यापारी अपनी-अपनी रोकड़ मिलाते हैं। १० रुपए वाले व्यापारी की रोकड़ में १५ रुपए निकले तथा १०,००० रुपए लगाकर व्यापार करने वाले व्यापारी की रोकड़ में ९,९९५ रुपए निकलते हैं। अब विचारणीय प्रश्न यह है कि कुशल व बड़ा व्यापारी कौन है। १० रुपए लगाकर १५ रुपए कमाने वाला या १०,००० रुपए लगाकर ९,९९५ रुपए करने वाला? यह निश्चित तौर पर सिद्ध है कि १० रुपए वाला व्यापारी कुशल और बड़ा है। ठीक इसी प्रकार मात्र छहदाला, जैन सिद्धांत प्रवेशिका आदि शास्त्र पढ़कर राग-द्वेष कम हो जाए तभी सही स्वाध्याय की कुशलता है, किन्तु समयसार, गोम्मटसार आदि बड़े-बड़े शास्त्रों का अध्ययन करें, आत्मा की सूक्ष्म चर्चा करें फिर भी राग-द्वेष मोह, विषयों के प्रति आसक्ति परिणाम कम न हो और पापों से विरति रूप भाव भी न बनें, तब उसका स्वाध्याय करना सफल नहीं। स्वाध्याय का फल राग-द्वेष की हानि होना बताया है न कि वृद्धि।